

शक्ति और सामर्थ्य का स्रोत-संयम



श्रीराम शर्मा आचार्य

युवा-निर्माण-योजना, मथुरा



: BOOK MADE AVAILABLE FOR DIGITIZATION BY :

DEV SANSKRITI VISWAVIDHYALAYA
HARIDWAR, INDIA

: OUR MAIN CENTERS :

Shantikunj, Haridwar,
Uttaranchal, India – 249411
Phone no : 91-1334- 260602,
Website : www.awgp.org
E-mail : shantikunj@awgp.org

Gayatri Tapobhumi,
Mathura, U.P., India – 281003
Phone no : 91-0565-2530128,
Website : www.awgp.org
E-mail : yugnirman@awgp.org

: BOOK DIGITIZED BY :

Vicharkranti Pustakalay, Thana-Faliya, Dindoligam, Surat-394210, Gujarat, India
E-mail: vicharkranti.awgp@gmail.com | Website : www.vicharkrantibooks.org

शक्ति और सामर्थ्य का स्रोत-संयम



मनुष्य जब सुख की खोज में इन्द्रिय और विषयों को साधन बनाकर प्रयत्न आरम्भ करता है, मन, बुद्धि को भी इसी ओर लगाता है तो इसी प्रयत्न में अनेकों दुःखों का उसके लिए सूत्रपात होजाता है। मनुष्य जब शरीर की आवश्यकता के लिए नहीं वरन् रसना के माध्यम से अनेक स्वाद के आनंद के लिए भोजन करता है तो भोजन की मात्रा और उसके स्वरूप का निर्णय पेट न करके जिह्वा करने लगती है। जीभ की तृप्ति के लिए मनुष्य तरह-तरह के सुस्वाद भोजन करता है और परिणाम रोग, शारीरिक कष्टों के रूप में ही प्राप्त होता है। यही बात जननेन्द्रिय के सम्बन्ध में है। उसका उपयोग संतानोत्पादन के लिए होता है। उसके साथ जुड़ा हुआ सुख तो प्रकृति का एक पारितोषिक और वरदान है। लेकिन जब मनुष्य संतानोत्पादन के लिए नहीं वरन् उस सुख को प्रधान मानकर विषयों में प्रवृत्त होता है और प्रकृति की मर्यादा का उल्लंघन करता है तो परिणाम में अपनी शक्तियों का ह्रास करता और दुःखों को निमंत्रण देता है अपनी जीवनी शक्ति का नाश करके मृत्यु की ओर अग्रसर होता है।

विषय-भोगों में, इन्द्रिय, मन, बुद्धि में, संसार और इसके पदार्थों में मनुष्य को सुख मिल ही नहीं सकता। जिसे हम सुख समझते हैं उसके बदले वस्तुतः बड़े दुःख के रूप में मूल्य चुकाना पड़ता है। जब तक वह सुख नहीं मिलता तो उसे प्राप्त करने की बेचैनी, फिर भोगते ही वह समाप्त हो जाता है फिर नये सिरे से उसकी प्राप्ति के लिए मन, बुद्धि, इन्द्रियों को सञ्चालित करना पड़ता है और कोल्हू के बेल की तरह एक अन्धी दौड़ में मनुष्य को इनके पीछे दौड़ते रहना है। दुःख, पश्चात्ताप, क्लेश, आत्मग्लानि, आसक्ति न

जाने कितनी ही हानियाँ उठानी पड़ती हैं इसके लिये । इसमें कोई सन्देह नहीं कि विषय-भोगों में हम जितने लिप्त रहते हैं, उतने ही मृत्यु और विनाश की ओर ही अग्रसर होते हैं ।

क्या आपको उस व्यक्ति की घटना याद है जिसने एक सुन्दर फूल देखा देख कर उसका मन ललचाया । उसने उसे तोड़कर नाक से सूँघा ही था कि वह दर्द के मारे चिल्ला उठा । क्यों ? उस फूल के अन्दर एक मधुमक्खी बैठी थी । सूँघते समय उसी ने उसे डङ्क मार दिया और वह दुःख से तिलमिला उठा । विषय-भोगों का सुख भी इसी तरह है । वह हमें लुभावना लगता है । हम उसमें लीन होते हैं लेकिन परिणाम के दुःख के जहरीले डङ्क से भी हमें घायल होना है ।

हमारे शरीर में निहित जीवन शक्ति ही सर्वत्र अपना काम करती है । सुनने में, खाने में, पीने में, काम करने में, यही अपना काम करती है । अन्य क्षेत्रों में शक्ति का इतना क्षय नहीं होता जितना संभोग में होता है । एक सीमा तक जबकि भोग मर्यादित होते हैं तब शक्ति अनावश्यक रूप से खच नहीं होती । लेकिन अमर्यादित वासना-तृप्ति में अन्य विषयों से अधिक शक्ति का क्षय होता है । इसलिए यह अधिक हानिकारक सिद्ध होता है । संयम में ब्रह्मचर्य इन्द्रिय-निग्रह को ही अधिक महत्व दिया गया है । यद्यपि अन्य भोगों का संयम भी आवश्यक होता है लेकिन मुख्य रूप से काम-वासना तथा रसना का संयम ब्रह्मचर्य का मूलाधार है, अन्य सब पूरक हैं ।

अनियन्त्रित, अमर्यादित वासनापूर्ति का हमारे शरीर, मन, ज्ञानतन्तुओं पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है । उससे केवल कुछ शारीरिक सत्व जो कि महत्वपूर्ण होते हैं उनका क्षरण ही नहीं होता अपितु सूक्ष्म प्राणशक्ति, जीवनी शक्ति का तो बहुत बड़ा अंश व्यय होता है । इस अपव्यय से हम खोखले, रिक्त, जर्जरित बनते जाते हैं, चाहे हमारा बाहरी कलेवर कितना ही मोटा-ताजा क्यों न दीखता हो । बीमारियाँ, रोग कीटाणु जिसे धर दबाते हैं उसे मृत्यु समय से पूर्व ही उठा ले जाती है । यह सब उस जीवनी शक्ति के अपव्यय के कारण होता है ।

वासना में लिप्त रहने से वह जीवन-रस जो शरीर को तेजवान्, रस-वान् बनाता है काफी मात्रा में नष्ट होता है और यही कारण है कि भोगीमनुष्य निस्तेज, रसहीन, सूखा-सा दिखाई देता है। उसके जीवन में सरसता, चेतना एवं स्फूर्ति जैसी चीज नाम मात्र को ही शेष रहती है ! उत्साह और सहस की मात्रा ऐसे लोगों में बहुत ही कम दृष्टिगोचर होती है।

इस तरह से होने वाले अपार क्षय को रोकने के लिए शक्तियों को संग्रहीत संचित करने के लिए, परिणाम में प्राप्त होने वाले दुःखों से बचने के लिये, हमारे पूर्वजों ने संयम, तप, ब्रह्मचर्य-जीवन के लिए आवश्यक बताया है। यह कोरी कल्पना नहीं है व्यवहार सिद्ध है। विषय में नष्ट होने वाली शक्ति को आप बचालें, उसे उपयोगी कामों में लगावें तो यह शक्ति अपने सूक्ष्म से सूक्ष्म रूपों में परिवर्तित होती हुई महत्वपूर्ण कार्यों को सम्पन्न करदेगी ऊर्द्धरेतस का यही अर्थ है कि मनुष्य जीवनी-शक्ति गन्दे मार्ग में नष्ट न कर उसे उत्कृष्ट कार्यों की साधना में लगाता है, इसे कई सूक्ष्म शक्तियों में परिवर्तित कर कला, साहित्य, ज्ञान-विज्ञान आदि का सृजन करने लगता है।

काम-शक्ति एक महत्वपूर्ण शक्ति है जिसको निम्नगामी बनाकर उसे नष्ट-करके अपने दुःखों का आधार बनाया जा सकता है, समाज में अपराधोंको प्रोत्साहन दिया जा सकता है या इसके विपरीत इसे संयमित कर उपयोगी महान् कार्यों में व्यय किया जा सकता है और इसीलिए संयम की आवश्यकता को महत्व दिया गया है। कोई व्यक्ति यदि अपनी शारीरिक, मानसिकबौद्धिक क्षमताओं को बढ़ाना चाहे, कोई महत्वपूर्ण सृजन अनुसन्धान का काम करना चाहे तो उसे संयम का पथ अपनाना पड़ेगा।

क्या आप शक्ति-सम्पन्न विजयी, सफल, महान् जीवन बिताना चाहते हैं ? क्या आप अपना व्यक्तित्व उत्कृष्ट बनाना चाहते हैं ? तो आपके लिए एक ही मार्ग है, वह है संयम का मार्ग, ब्रह्मचर्य की साधना। भोगों के पथ पर चल कर शक्ति का, महानता का विश्वास का पथ सन्धान नहीं किया जा सकता यह उतना ही सत्य है जितना छिद्रयुक्त घड़े में पानी का संचय नहीं किया जा

सकता। संयम को छोड़कर अन्य कोई मार्ग नहीं है अपने उत्कर्ष का, जीवन का, महानता का, सुख का, शान्ति का।

इन्द्रिय संयम की आवश्यकता

मनुष्य के शरीरमें परमात्मा ने दस इन्द्रियाँ दी हैं पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ। १—आँख २—कान ३—नाक ४—जिह्वा ५—त्वचा। ये पाँच इन्द्रियाँ ज्ञान प्राप्त करती हैं। आँख से भला-बुरा देखना, कान से कोमल-कठोर शब्द सुनना, नाक से सुगन्ध-दुर्गन्ध सूँघना जिह्वा से खाद्य-अखाद्य का स्वाद जानना त्वचा से कोमलता कठोरता का अनुभव करना। प्रत्येक इन्द्रिय का एक देवता होता है उसी से विषयों की उत्पत्ति होती है। आँख का विषय रूप है और सूर्य देवता। सूर्य या अग्नि न हो तो आँखें बेकार हैं। कान का विषय शब्द, गुण आकाश है। नाक का विषय गन्ध और गुण पृथ्वी है। जीभ का विषय रस और गुण जल है। त्वचा का विषय स्पर्श और गुण वायु है। इन गुणों और शक्तियों के कारण इन्द्रियों का उपयोग बहुत अधिक है।

पाँच कर्मेन्द्रियों में १—वाणी २—हाथ ३—पैर ४—जननेन्द्रिय और ५—गुदा हैं। वाणी या मुख से बोलते हैं, स्वाद चखते हैं। हाथ से कार्य करते हैं, पैर से चलते हैं। जननेन्द्रिय से मूत्र त्याग और गुदा से मल निकालते हैं।

यह इन्द्रियाँ आत्मा की सुविधाजनक विकास यात्रा के सहायक उपकरण हैं। यह आत्मा के औजार हैं, सेवक हैं, परमात्मा ने इन्हें इसलिए प्रदान किया है कि इनकी सहायता से आत्मा अपनी आवश्यकताएँ पूरी करे और सुख प्राप्त करे। यह सभी इन्द्रियाँ बड़ी उपयोगी हैं। सभी का कार्य जीव को उत्कर्ष और आनन्द प्राप्त कराना है। यदि उनका सदुपयोग किया जाय तो मनुष्य निरन्तर जीवन का मधुर रस चखता हुआ जन्म को सफल बना सकता है।

ज्ञानेन्द्रियाँ ईश्वर ने शरीर में ऊपर की ओर बनाई हैं और कर्मेन्द्रियाँ नीचे की ओर। इससे परमात्मा ने ज्ञान को प्रधानता दी है और यह संकेत



दिया है कि ज्ञान के अनुसार, विवेक के अनुसार ही कर्म करो। इनसे तुम्हें सुख मिलेगा और अधोगामी विषयों में भटके तो यही इन्द्रियाँ तुम्हारे लिये काल रूप और विनाश का कारण बन जायेंगी।

उपनिषद्कार ने बताया है—

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।

बुद्धि तु सारिथि विद्धि मनः प्रग्रहेव च ॥

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान् ।

आत्मेन्द्रिय मनोयुक्त भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥

अर्थात्—यह शरीर एक रथ है, इस पर आरुढ़ होने वाला स्वामी जीवात्मा है। जीवात्मा को यह वाहन मोक्ष प्राप्त करने के लिए मिला है। इसी इन्द्रियाँ इस रथ के घोड़े हैं। मन इन घोड़ों को नियन्त्रण में रखने वाली चागडोर है। इन्द्रियों के घोड़े विषयों की सड़क पर चलते हुए मुक्ति यात्रा की ओर बढ़ते हैं। इस वाहन पर सारथी है मनुष्य की बुद्धि और उसका विवेक। यदि वह सजग है तो इन्द्रियाँ विषयों में न भटक कर कुशलतापूर्वक अपने स्वामी को परमात्मा की समीपता में पहुँचता देती हैं।”

इन्द्रिय-संयम का सिर्फ इतना ही मतलब है कि इन्द्रियाँ जब भी विषयों की ओर दौड़ें तब उन्हें सावधानी से सम्हाला जाय और शक्ति को बरबाद न किया जाय जिससे आत्मा की विकास-यात्रा पूरी होती है।

इन्द्रिय का उपयोग पाप नहीं है। विषय भी आवश्यक हैं। सच तो यह है कि अन्तःकरण को विविध क्षुधाओं, तृषाओं को तृप्त करने का इन्द्रियाँ एक उत्तम माध्यम हैं। शरीर की इन आवश्यकताओं को समय पर पूर्ण न किया जाता रहे तो जीवन का सन्तुलन उसी तरह बिगड़ सकता है जिस तरह पेट को आहार न मिलने से स्वास्थ्य-सन्तुलन बिगड़ सकता है।

इन्द्रिय-नियन्त्रण का मूल मन्त्र है आत्म-संयम। शरीर की शक्तियाँ जीव की विकास यात्रा के लिए उपयोगी ही नहीं आवश्यक भी हैं। शरीर में बल और वीर्य की प्रचुर मात्रा न रहे तो वह आत्मिक आदेशों का पालन भली प्रकार नहीं कर सकेगा। इसलिए वीर्यरक्षा आवश्यक है और सम्भोग-क्रिया

को नियन्त्रित कर दिया जाता है। यह सन्तानोत्पत्ति का साधन है ताकि भावी पीढ़ियाँ चलती रहें। पर बेकाम वीर्य-पात का कोई उपयोग नहीं, उल्टे उमसे शारीरिक शक्ति का पतन होता है और मनुष्य की बुद्धि विभ्रमित हो कर आत्म-कल्याण का मार्ग छोड़ देती है।

आहार शरीर की बहुत बड़ी आवश्यकता है इसे सभी जानते हैं। आहार न मिले तो जीवित रहना मुश्किल हो जाय। यह शरीर के लिये अत्यन्त आवश्यक घर्म है किन्तु शरीर-रक्षा के लिये स्वाद की उपयोगिता समझ में नहीं आती। केवल स्वाद-स्वाद की लालसा में पेट खराब हो जाता है, स्वास्थ्य गिर जाता है। इस तरह आहार जो शरीर की आवश्यकता थी; वही विधर्म बन कर हमारी शक्तियों के पतन का कारण बन जाता है। कोई भी इन्द्रिय हो उसके उपभोग की एक सीमा निर्धारित है। उस सीमा के अन्दर बने रहने से ही उसका सच्चा उपयोग किया जा सकता है। पर यदि उसका अतिक्रमण किया गया तो रोग और शोक घेर लेंगे। उपकारी इन्द्रियाँ ही तब बन्धन का कारण बन जायेंगी। इसलिये इन्द्रिय-निग्रह के लिए आत्म-संयम की बड़ी आवश्यकता है।

इतना जानते, समझते हुए भी लोग विषयासक्त देखे जाते हैं। इसका कारण भाँति-भाँति के प्रलोभन होते हैं। लोगों को तरह-तरह के भोग भोगते देखकर, शृंगार, सजावट तथा बनावट करते देखकर अविवेकी जन खुद भी वैसा ही करने के लिए लालायित होते हैं। इन प्रलोभनों में प्रायः नैतिक दृष्टि से कमजोर और निर्बल चरित्र वाले व्यक्ति ही फँसते हैं। जिनकी आवश्यकतायें विलासी, इच्छायें चर्चोरपन, अनुचित माँगें, नशे बढ़े हुए हैं वे ही प्रायः प्रलोभनों के सामने घुटने टेकते और उनके दुष्परिणाम भोगते हैं।

इन प्रलोभनों से बचने के लिये प्रतिदिन कुछ समय निकाल कर आत्म-चिन्तन करना और आत्म-सकेतों द्वारा आत्मा तथा मन को बलवान् बनाना आवश्यक है—'मेरा मन पर पूर्ण अधिकार है। मैं अपने मन का स्वामी हूँ। वह मेरी आज्ञा से काम करता है। प्रचण्ड अग्नि और भयङ्कर तूफान भी मुझे नष्ट नहीं कर सकते। मैं अमर हूँ, शाश्वत हूँ। शरीर का मझाट मैं आत्मा



असंख्य सूर्यों की शक्ति रखता हूँ। मैं विश्व को प्रेमभर्य देखता हूँ। मेरा मन से कोई विरोध नहीं। मैं जो कुछ करता हूँ वह सब आत्म-कल्याण की भावना से होता है।” इस प्रकार का संकल्प प्रतिदिन शरीर के तमाम अंगों से थोड़ा समय निकाल कर दुहराते रहना चाहिये। ऐसा करने से विषयों के प्रलोभनों से सावधान बने रहेंगे।

इन दिनों इस देश में दीर्घजीवी पुरुषों की कमी इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि वीर्य रक्षा पर आवश्यक ध्यान नहीं दिया जाता।

इन्द्रिय संयम के लिए ब्रह्मचर्य-व्रत की महिमा सर्वविदित है। इसकी शक्ति अमोघ मानी गई है और आज संसार में जितने व्यक्तियों ने महान् और उपयोगी कार्य कर दिखाये हैं वे किसी न किसी रूप में ब्रह्मचर्य के अनुगामी थे। आजकल के लोग जब कभी सम्भोग नीति की स्पष्टता का प्रचार करते हैं तब वे केवल भोग-प्रधान पार्थिव अंश को ही ध्यान में लेते हैं। जीवन की इतनी क्षुद्र कलना वे ने बँटे हैं कि थोड़े ही दिनों में यह अनुभव हो जाता है कि ऐसी स्वतन्त्रता में किसी तरह की सिद्धि नहीं है और न सच्ची तृप्ति ही। उन्हें कभी सन्तोष नहीं मिलता।

मनुष्य शरीर में जीवात्मा का अवतरण निःसन्देह उसका बहुत बड़ा सौभाग्य होता है। विचार, विवेक और जीवन मुक्ति के अग्न्य साधन जितने मनुष्य-योनि में मिलते हैं वे अन्यत्र उपलब्ध नहीं। मनुष्य चाहे तो अनन्त विभूतियों का स्वामी बन सकता है। मनुष्य देवता बन सकता है। मनुष्य भगवान बन सकता है। सारी सम्भावनायें इस शरीर में सन्निहित हैं किन्तु उनका उत्कर्ष और जागरण तभी सम्भव है जब शक्तियों का संयम किया जाय और उनके अनावश्यक अव्यय को रोका जाय। इसके लिये इन्द्रिय-संयम की मनुष्य को प्रमुख आवश्यकता है। बिना इस कक्षा को उत्तीर्ण किये कोई आत्म-कल्याण की उच्च भूमिका प्राप्त नहीं कर सकता।

संयमी ही आत्म-जयी होते हैं

परमार्णु-शक्ति को धारण करने वाला ब्रह्म, कहते हैं कि इतनी शक्ति-शाली धातु का बना होता है कि उस पर बाहरी आघात का कोई प्रभाव नहीं



होता। इतनी कड़ी और मजबूत धातु का आवरण उस पर न चढ़ाया जाय तो उस बम के किसी भी क्षण विस्फोट हो जाने का खतरा बना रहेगा। मानसिक शक्ति के संगठन से आत्मा की चैतन्य शक्ति भी बढ़ती है। इस शक्ति को धारण करने के लिए भी पुष्टिमान शरीर की आवश्यकता होती है। अतः आत्म-विजय के साधक को शक्तियों पर नियन्त्रण करने की विद्या आनी चाहिये। एक और शक्ति एवं श्रम, को साधना और एकाग्रता से संचय करें और उसे इन्द्रिय-छिद्रों से निर्बाध बह जाने दें तो शक्तिशाली बन सकने का अनुमान गलत ही सिद्ध होगा। प्रयत्न और परिश्रम का फल संयम से मिलता है। जो अपने आवेगों, भावों और इच्छाओं को बश में रखता है, आत्म-विजय की कीर्ति का वही सच्चा अधिकारी है।

आवेगों को निरन्तर काबू में रखने की सहनशक्ति का ही पर्याय है संयम। आवेग और इच्छायें मन में पैदा होती हैं, फिर उनका प्रभाव और प्रतिक्रिया इन्द्रियों पर पड़ती है। इसलिए बिपरीत परिस्थितियों से निरन्तर संघर्ष करने की मानसिक दक्षता होनी चाहिये। अव्यक्त बातों का प्रभाव मस्तिष्क को उत्तेजित न करे यही समय की कसौटी है।

यूनान के विख्यात दार्शनिक 'पैरीक्लीज', के पास एक दिन कोई क्रोधी व्यक्ति आया। वह पैरीक्लीज से किसी बात पर नाराज हो गया और वहीं खड़ा होकर गालियाँ बकने लगा। पर पैराक्लीज ने उसका जरा भी प्रतिवाद न किया। क्रोधी व्यक्ति शाम तक गाली देता रहा। अंधेरा हो गया तो घर की ओर चल पड़ा तो पैरीक्लीज ने अपने नौकर को लालटेन देकर उसे घर तक पहुँचा आने के लिए भेज दिया। इस आन्तरिक सहानुभूति से उस व्यक्ति का क्रोध पानी-पानी हो गया।

सामान्य श्रेणी का व्यक्ति होता तो वह भी लड़ बैठता और हिंसा भड़क उठती। दोनों पक्षों की हानि होती, शक्ति खर्च होती। आत्म-संयम मनुष्य को अनेक झगड़ों से बचाकर शक्ति का अपव्यय रोक देता है।

मानसिक संयम; शारीरिक संयम की बुनियाद है। मन इच्छानुवर्ती हो जाता है और उसकी दिशा संयम की ओर मुड़ जाती है तो शारीरिक



शक्तियों का असाधारण विकास होना सम्भव है । यौगिक साधनाओं के लिये तो संयम साक्षात् कामधेनु है । बड़े-बड़े चमत्कार दिखाने वाले पहलवान राम-मूर्ति संयम के बल से बड़ी-बड़ी गाड़ी, मोटरों को रोक लेते थे । हाथी को छाती पर चढ़ा लेना उनके लिए सहज कार्य था । संयम ही वस्तुतः साधना की पृष्ठभूमि है । इसके बिना कोई विशेष शक्ति पाना प्रायः असम्भव ही है ।

अपनी वासनाओं पर विजय प्राप्त कर लेना मनुष्य की सर्वोत्कृष्ट साधना है । इन्द्रियों की लालसायें, क्रोध, मोह, पापकर्म आदि से जो लोग घिरे रहते हैं उनके शरीर और मन का पतन निश्चित है । इस कारण उन्हें व्याधियाँ सताती रहें तो यह कुछ अनहोनी बात न कही जायगी । हीनता, दुर्बलता और मानसिक दुर्दशा का कारण ये वासनायें ही हैं । उनसे मुक्त हुए बिना आत्म-कल्याण का मार्ग प्रशस्त नहीं होता । मन में जब तक क्रोध है, तब तक विष की क्या आवश्यकता ? ईर्ष्या अग्नि के समान जलाती रहती है । इन्हीं में पड़े रहने से मनुष्य जीवन का कोई भी लक्ष्य पूर्ण नहीं होता । कठोपनिषद् में इस सम्बन्ध में बड़ी मार्मिक उक्ति दी है । लिखा है—

विज्ञान सारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान् नरः ।

सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परम पदम् ॥

अर्थात् जो मनुष्य विवेकी सारथि के सामान जाग्रत बुद्धि के द्वारा मन की लगाम को वश में रखता है वह इस संसार से पार होकर परमेश्वर का परम पद प्राप्त करता है ।

असंयम का प्रभाव मनुष्य जीवन पर सदैव ही दूषित होता है । गुस्से में या अपमानजनक बात सुनने के बाद उस पर तुरन्त, अपना मन्तव्य प्रकट करना या अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करना भला नहीं होता । कामुकता पर भी इसी तरह सद्यः निर्णय पतनकारी होता है । आप पर उस समय जो आरोप लगाये गये हैं, अथवा किसी कामुक विचार ने यदि आक्रमण किया है तो उसी वक्त उसे मत मान लीजिए । थोड़ी देर रुक कर; एकान्त में जाकर उस पर विचार कर लीजिये । हित-अहित का यथोचित विचार किये बिना प्रायः हानि ही उठानी पड़ती है ।

आक्रामक परिस्थिति को कुछ देर तक के लिए टाल देने से सुरम्त के आवेग से आप बच जाते हैं और निर्णय के लिए समय मिल जाता है। विपक्षी का व्यवहार भी तब तक शान्त हो जाता है। अपने मानसिक आवेशों को भी इसी तरह भुलाया-बहकाया जा सकता है। भावुकता से दूर रह कर विषय को हर दृष्टि से परख लेने से समस्या का एक अच्छा हल निकल आता है और व्यर्थ के शक्ति व्यय से बच जाते हैं।

मनुष्य की इन्द्रियाँ रात-दिन उसे अपनी ओर खींचती रहती हैं। जीभ चहती है कि तरह-तरह के मिठाई, पकवान और स्वादिष्ट व्यंजन खाने को मिलें। सुन्दर दृश्य देखने के लिए आँखें बार-बार उत्सुक रहती हैं, कानों को हमेशा मधुर संगीत की खोज रहती है। इन्द्रियों और मन के विषय त्रसीम हैं। इनसे मनुष्य की कभी तृप्ति नहीं होती वरन जीवन दिशा पूर्णतया सांसारिक हो जाती और आत्म-ज्ञान की महत्वपूर्ण आवश्यकता तो बीच में ही छूट जाती है। अनन्त सुख सामर्थ्य, सौन्दर्य और माधुर्य का भण्डार हमारी आत्मा है। वह नित्य, शाश्वत, अव्यय और अविनाशी है। काम, क्रोध, मद, लोभ, राग, द्वेष, ईर्ष्या आदि हान वृत्तियों के आधीन होकर आत्म-विजय की मूल-भूत आकांक्षा को मनुष्य ठुकरा देता है। कदाचित् यह ज्ञान मनुष्य को मिल भी जाय तो भी वह इन प्रलोभनों से जल्दी ही नहीं छूट पाता। इसके लिए उसे संयम के अभ्यास की आवश्यकता पड़ती है। संयमी व्यक्ति ही आत्मोन्नति को ओर अग्रसर हो सकते हैं।

मान लीजिये आप थोड़ी देर के लिए इन्द्रियों का सुख प्राप्त कर ही लेते हैं तो क्या इससे शक्यपूर्ति में कुछ मदद मिल सकती है? क्या शक्ति के अपव्यय से निराशा, उत्तेजना और असन्तोष पैदा नहीं होता? इन्द्रियों के सुख कभी मनुष्य को तृप्त नहीं कर पाये हैं। इसलिए उधर से मुख मोड़ने में ही मनुष्य का परम कल्याण है। वासनाओं की तृप्ति के लिए जिस तरह अभ्यास पड़ जाता है उसी तरह आत्म-संयम की प्रवृत्ति को प्रखर बनाया जा सकता है। अपने उद्यम, पुरुषार्थ, साहस, संलग्नता विवेक आदि से उच्च आध्यात्मिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं किन्तु इन्द्रिय-लोलुपता को सर्वप्रथम दमन

करना होगा। इनके बिना कोई तपश्चर्या चाहे वह आध्यात्मिक हो या सांसारिक उन्नति सम्बन्धी कभी भी फलदायक नहीं होगी। संयम ही सफलता का मूल-मन्त्र है।

प्रायः लोगों को शिकायत रहती है कि क्या करें हम से तो संयम होता ही नहीं। अधिकांश व्यक्तियों का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि लोगों की सङ्कल्पशक्ति इतनी कमजोर होती है कि वे किसी उच्च विचार पर देर तक स्थिर नहीं रह पाते। एफ. डब्ल्यू. रावर्टसन ने लिखा है कि “चरित्र बल दो शक्तियों पर अवलम्बित है। दृढ़ संकल्प और आत्म-दमन। सशक्त भावों के साथ-साथ उन पर दृढ़ अधिकार होना भी सच्चरित्रता के आवश्यक अङ्ग हैं।

आत्मा हमें सुपथ पर ले जाती है पर उसकी बात अनसुनी कर देने की मनुष्य में बहुत बड़ी कमजोरी है। उसकी तलाश तात्कालिक सुखों की ही होती है। दूरगामी परिणामों के प्रति स्थिरता न होने के कारण ही सारा जीवन विशृङ्खलित होता है। आत्म-संयम की वृत्ति देखने में कठोर, रूखी, नीरस भले ही प्रतीत होती हो पर कालान्तर में जब शक्ति का प्रवाह हमारे अन्दर फूट पड़ता है तो सारा जीवन उल्लास और प्रसन्नता से परिपूर्ण हो जाता है।

किसी भी प्रकार हो, हमें जीवन लक्ष्य में उच्च-भावना से मन को एकाग्र करके मनुष्य जीवन को सार्थक बनाने का प्रयत्न करना चाहिये। इसके लिए अनेकों मार्ग धर्म-प्रेरणाओं ने निर्धारित किये हैं। अपनी शक्ति, योग्यता के अनुसार कोई भी रास्ता चुन सकते हैं। किन्तु उस पर पूर्ण एकाग्रता से चलना पड़ेगा। सारी शक्तियों को केन्द्रित करके जब शर-सन्धान किया जाता है तभी लक्ष्यपूति होती है। शक्ति-संचय का मार्ग है संयम। संयमित जीवन से ही सफलता के सारे रहस्य खुलते हैं। इसी से आत्म-जय की आकांक्षा पूर्ण होती है।

जिह्वा के संयम से स्वास्थ्य की सिद्धि

मनुष्य की स्वास्थ्य रक्षा में जिह्वा का महत्वपूर्ण योगदान रहता है :



किन्तु बहुत कम लोग इस ओर ध्यान देते हैं। जिह्वा को असंयत तथा अस्वच्छ रखने वाले उसकी स्वास्थ्य सहायता से वंचित रह कर शीघ्र ही आरोग्य की हानि कर लेते हैं।

खाद्य अथवा पेय पदार्थों को सेवन करने के लिये जब मुख में डाला जाता है तब सबसे पहले जिह्वा ही उसके अच्छे, खराब, ताजी, बासी, रुचिकर अरुचिकर; तिक्त, कटु आदि होने की सूचना देती है। वह अनेक अयोग्य पदार्थों को अस्वीकार करके शरीर, स्वास्थ्य की रक्षा करती है।

जिह्वा में कुछ ऐसी ग्रन्थियाँ होती हैं जो राल नामक एक तरल तत्व उत्पन्न करके खाद्य पदार्थ में मिलती है। यह तत्व खाद्य को न केवल सरल बनाकर चबाने अथवा निगलने में ही सहायक होता है अपितु भोजन के साथ पेट में जाकर उसे जीर्ण करने में पेट की भी पाचन क्रिया में सहायक होता है अक्सर अनुभव किया जा सकता है कि जब किसी अयोग्य अथवा अरुचिकर ऐसे पदार्थ को खाने का प्रयत्न किया जाता है जिसे जिह्वा स्वीकार नहीं करती तो वह पदार्थ जल्दी चबाते या निगलते नहीं बनता इसका कारण यही है कि जिह्वा की अस्वीकृति के कारण उक्त ग्रन्थियाँ असहयोग करके राल का छोड़ना बन्द कर देती हैं, जिससे अवाँछनीय पदार्थ न तरल होकर शीघ्र निगलने योग्य हो पाता है और न पेट में शीघ्र पचता है। इसलिए स्वास्थ्य के लिए जरूरी है कि जिह्वा का उचित आदर-सम्मान किया जाये।

अयोग्य भोजन अथवा बार बार खाते-पीते रहना जिह्वा का असंयम है। एक तो अपने स्वभाव के विरुद्ध उसे अरुचिकर पदार्थों का सम्पर्क पाने से उसमें विषण्णता आती है जो उसकी शक्तियों को क्षीण करता है जिससे वह कालान्तर में अच्छे-खराब, योग्य-आयोग्य भोजन की सूचना देना छोड़ देती है और इस प्रकार अनेक अवाँछनीय पदार्थ पेट में जाकर स्वास्थ्य को हानि पहुँचाते हैं। बार-बार खाते-पीते रहने से जिह्वा को अनावश्यक एव आन्तरिक श्रम करते रहना पड़ता है। उसकी राल ग्रन्थियाँ शिथिल होकर शुष्क रहने लगती हैं जिससे भोजन के साथ पाचक रस पेट में नहीं जा पाता जिसका परिणाम अजीर्ण के रूप में भोगना पड़ता है। जिस प्रकार हाथ-पाँव

आदि किसी भी इन्द्रिय से अनावश्यक अथवा अधिक श्रम लेने से पूरे शरीर के स्वास्थ्य पर कुप्रभाव पड़ता है उसी प्रकार जिह्वा से भी अनावश्यक श्रम लेने से शारीरिक स्वास्थ्य को क्षति पहुँचती है ।

अधिक तिक्त, तीव्र अथवा रसातिरेक वाले पदार्थ सेवन करने से जिह्वा में एक छटपटाहट पैदा होती है और उसकी राल ग्रन्थियाँ धबकाकर एक दम राल-रस का स्रोत खोल देती हैं जिससे शीघ्र ही उनको वह निधि समाप्त हो जाती है और उनमें छूँछापन आ जाता है । साथ ही जहाँ राल भोजन को पचाने में सहायक होती है वहाँ उसका अधिक मात्रा में स्राव होना पाचन-क्रिया पर विपरीत प्रभाव डालता है जो कि समग्र शारीरिक स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होता है । इसलिये जरूरी है कि रसना को सहसा उत्तेजित कर देने की कारणभूत तीव्रताओं तथा स्वादातिरेकताओं से बचाये रखा जाये ।

बार-बार खाने-पीने के कारण मुँह हर समय जूठा और जिह्वा गन्दी बनी रहती है । इसीलिये जूठा मुँह रखने का निषेध शास्त्रों में किया गया है । जूठे मुँह रहने से मुख का अवशिष्ट उच्छिष्ट हर समय बन्द रहने के कारण शीघ्र ही सड़ने लगता है । जिससे न केवल मुँह से दुर्गन्ध ही आने लगती है बल्कि मुँहासे तथा छालों आदि के अनेक रोग उत्पन्न होते हैं । इतना ही नहीं मुख के रोगों के विषैले तत्व तथा कीटाणु हर समय राल के साथ पेट में जाते हैं जिससे पेट तो खराब होता ही है, राल के रास्ते कंठ आदि की नालियों में भी विकार पैदा हो जाते हैं । ऐसी रुग्ण स्थिति में आरोग्य की अशा किस प्रकार की जा सकती है ?

आरोग्य शास्त्र में जिह्वा की सफाई पर बहुत जोर दिया गया है । शरीर के अन्य अवयव आँख, नाक, कान, हाथ, पाँव आदि तो अपने विषैले तत्व पसीना, पानी, नाक, थूक आदि के रूप में कुछ न कुछ निकालते रहते हैं, किन्तु जिह्वा को ऐसी कोई सुविधा प्राप्त नहीं होती । इसलिए उसका साफ किया जाना बहुत जरूरी है । साफ किया जाना ही क्यों, हर समय रखना जरूरी है । अब जो आदमी बार-बार खाता है, पान, तम्बाकू या बीड़ी सिगरेट



आदि का सेवन करता रहता है वह भला दिन में कितनी बार जीभ धोकर साफ रख सकता है। इसलिये जिह्वा को हर समय साफ रखने के लिए बीड़ी, सिगरेट, पान, तम्बाकू आदि का प्रयोग और बार-बार खाने-पीने की आदत छोड़ना भी आवश्यक है। ऐसा करना स्वास्थ्य की दिशा में एक निश्चित पग उठाना ही होगा।

इसके अतिरिक्त जिह्वा का एक और नियन्त्रण बहुत ही महत्वपूर्ण है। वह है—वाणी का नियन्त्रण। कटु, कठोर, गन्दे अथवा अप्रिय शब्द बोलने से न केवल सुनने वाले को ही कष्ट देते हैं, बल्कि अपने मानसिक संस्थान पर भी आघात करते हैं। कटु-कठोर, शब्दों के पीछे उत्तेजना तथा क्रोध का आवेग रहा करता है, जो मनुष्य की जीवनी शक्ति के लिए शोषक शिविर का काम करता है। मधुर, शिष्ट और प्रिय बोलने से सुनने वाले को सुख मिलता और अपना हृदय भी शीतल होता है। समाज में अज्ञात शत्रुता की वृद्धि होती है। जो लोग कटु, कुटिल, कठोर अथवा अप्रिय बोलकर अपने शत्रु पैदा कर लेते हैं, वे चिन्ता के रूप में अपने स्वास्थ्य को घुन लगा लेते हैं। इसलिये आवश्यक है कि स्वास्थ्य रक्षा के लिये मधुर एवं मनोहर सम्भाषण किया जाय।

कम बोलना तो स्वास्थ्य के लिए साक्षात् संजीवनी ही है। इसीलिये शास्त्रों में मौन को बहुत महत्व दिया है। रोगी के शीघ्र स्वस्थ होने में उसका विवशतःपूर्ण मौन तथा चिकित्सकों का यह निर्देश कि रोगी को छेड़ा न जाये बहुत सहायक होता है। जो लोग मौन भाव से चुपचाप अपना कार्य करते रहते हैं, वे अधिक काम कर लेते हैं। इसका कारण यही होता है कि मौन उसके जीवन तत्व को नष्ट नहीं होने देता। मौन अथवा अल्प-सम्भाषण का नियम निवाहने वालों के मन-मस्तिष्क सक्षम तथा शरीर स्वस्थ रहा करता है।

बोलने, बात करने आदि वाणी प्रधान प्रक्रियाओं में सबसे अधिक प्राण-वायु का व्यय होता है। जितनी थकान दिन भर काम करने में नहीं आती उससे कहीं अधिक थकान एक घण्टे लगातार बात करने में आ जाती है। यही कारण है कि वाणी प्रधान, अध्यापक, प्रवचन, भाषण, प्रचार तथा वकालत आदि का पेशा करने वालों का स्वास्थ्य प्रायः सन्तोषप्रद नहीं रहता।



अधिक बोलना अथवा अधिक जोर से बोलना स्वास्थ्य के लिए बहुत खतरनाक है। जोर-जोर से अलाप भर कर गाने वाले, चीख चीख कर भाषण देने वाले अथवा उत्तेजित होकर चिल्ला उठने वाले लोग अपने स्वास्थ्य को शीघ्र ही चोपट कर लेते हैं। थोड़ी देर बोलने के बाद ही शरीर में शिथिलता और मस्तिष्क में पीड़ा हो जाती है शरीर तब उसको दूर करने के लिये घण्टों तक मौन रह कर आराम की आवश्यकता होती है। अधिक वाचालता अथवा आवेग-पूर्ण वार्तालाप से बचकर अपने स्वास्थ्य की रक्षा करना प्रत्येक बुद्धिमान के लिये वांछित है।

इस प्रकार अनेक दृष्टिकोण से देखा जा सकता है कि जिज्ञा का संयम तथा सफाई मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए बहुत आवश्यक है उसके विपरीत आचरण करने वाले को ठीक से स्वस्थ रहने की आशा नहीं रखनी चाहिए।

“ब्रह्मचर्येण तपसां देवा मृत्युमुपाध्नयः”

यह अथर्व वेद का सूक्त है, जिसमें मन्त्रदृष्टा ने बताया है कि ब्रह्मचर्य की साधना से विद्वान लोग मृत्यु को जीत सकते हैं। इसी प्रकार युग-पुरुष भगवान् कृष्ण ने भी कहा है—यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति। अर्थात्—यदि परमात्मा को प्राप्त करना चाहते हो, तो ब्रह्मचर्य का पालन किया करो।

उपर्युक्त दो सूक्तियों से दो शिक्षायें मिलती हैं। (१) पहली यह है कि ब्रह्मचर्य से मनुष्य को आयुर्बल मिलता है, अकाल मृत्यु नहीं होती, इच्छा-नुकूल मृत्यु होती है। (२) ब्रह्मचर्य अर्थात् ब्रह्म की, सत्य की, शोध में चर्या अर्थात् तत्सम्बन्धी आचरण। यह दोनों ही बातें ऐसी हैं जिनकी सत्यता को भारतीय संस्कृति के प्रादुर्भाव काल से अब तक लोग मानते आये हैं। देश, काल और परिस्थिति के अनुकूल ईश्वर प्राप्ति की साधना में अन्तर आ सकता है किन्तु ब्रह्मचर्य किसी न किसी स्थिति में प्रत्येक विधि के साथ आवश्यक कहा गया है।

यह बातें ज्ञान और विज्ञान की ठहरों। किन्तु व्यावहारिक जीवन और सांसारिक कार्यक्रमों में जिस शक्ति, स्वास्थ्य, मेधा और बुद्धि की आवश्यकता



पड़ती है, उसके लिए भी ब्रह्मचर्य उतना ही आवश्यक है जितना पहली दो स्थितियों में। गृहस्थ जीवन में जिस सुख की कल्पना की जाती है उसका श्रेय बहुत कुछ ब्रह्मचर्य-व्रत को ही कह सकते हैं। मनुष्य विचारशील प्राणी है उसे अपना आगा-पीछा, हित-अहित सोचकर चलने की क्षमता प्राप्त है। मनुष्य जीवन के सुख प्राप्त करने के लिए जीवन को सुव्यवस्थित न रखें तो सुख की कितनी ही कामना करें, दुःख ही भोगना पड़ता है। शारीरिक उत्तेजनाओं से उत्तेजित होकर तथा मानसिक निर्बलताओं से प्रेरित होकर बहुमूल्य जीवनी शक्ति को यों ही बर्बाद कर देना मनुष्य की घोर अज्ञानता का चिह्न है। वह जीवन शुष्क, नीरस, अन्धकारमय, उच्छिष्ट, और अपवित्र और मृततुल्य है जिसमें मनुष्य ने शरीर सुख की क्षणिक तृप्ति के लिए हाड़-मांस के पुतले से चिपट-चिपट कर अपना जीवन स्वत्व बर्बाद कर दिया होता है। थोड़े ही दिन में जब शरीर शिथिल पड़ जाता है, इन्द्रियाँ जवाब देने लगती हैं तब होश आता है, किन्तु अकाल मृत्यु को दरवाजे पर बुलाकर पछताने से होता भी क्या है। अतः आवश्यक है कि हम मन्त्र दृष्टा ऋषि की वाणी को हृदयंगम करें और अधिक से अधिक ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन किया करें।

मनुष्य को तभी बुद्धिमान कह सकते हैं जब वह सांसारिक पदार्थों एवं घटनाओं का अध्ययन करके अपनी मानसिक उत्तेजनाओं का समाधान कर लिया करे। प्रतिदिन अनेकों ऐसे लोगों को देखते हैं जिनके शरीर सूखे, निर्बल और शक्तिहीन दिखाई देते हैं। दूसरी ओर कुछ हट्टे-कट्टे स्वस्थ और बलिष्ठ व्यक्ति भी दिखाई देते हैं। सम्भव है कुछ स्वस्थ पुरुषों को खान-पान की अच्छी सुविधायें रही हों किन्तु यदि आचरण की गहराई में जाकर देखें तो यही मालूम पड़ेगा कि दुर्बल व्यक्तियों ने असंयम किया है। शरीर की विद्युत-शक्ति, प्राण-शक्ति का अनावश्यक दुरुपयोग किया है। इसी कारण वे अप्रिय, दुःखी, रोगी एवं अप्रसन्न दिखाई देते हैं। यह बात प्रायः हर व्यक्ति जानता और अनुभव करता है पर चतुर वे हैं जो इन विचारों का लाभ अपने व्यावहारिक जीवन में प्राप्त करते हैं।

क्षणिक रस के लिए मैं शक्ति हीन क्यों बनूँ ? जिस वीर्य में सन्तानोत्पादन की शक्ति भरी पड़ी है उसे क्यों नष्ट करूँ ? जीवन को अल्हादित उल्लसित एवं चमकदार रखने वाले द्रव्य का पतन क्या अच्छी बात है ? परमात्मा की इस शक्ति को विनष्ट करना सचमुच गैर जिम्मेदारी है, अपराध है, मैं इस अपराध को नहीं करूँगा। इस तरह के विचारों को प्रतिदिन ध्यान में लाना चाहिए। मानसिक विग्रह की स्थिति में इन पर बार-बार गहराई से विचार करना चाहिये। वीर्य-रक्षा करने वाले मनुष्य ही इस संसार के भोग भोगते हैं।

संसार के किसी भी बाह्य पदार्थ को अपने सुख का कारण न मानना मनुष्य के सर्वोत्कृष्ट ज्ञान का परिचायक है। सुख विचार की वस्तु है, भावना से प्राप्त होता है। स्वस्थ भावनायें और बलिष्ठ विचारों से आमोद उत्पन्न होता है पर विचारों की सक्रियता और भावनाओं की मस्ती तो ब्रह्मचर्य से ही प्राप्त होती है। शक्ति ही सुख का मूल है, यह समझकर अपनी शारीरिक शक्ति के अपव्यय को रोकने में ही चतुरता है। बाह्य पदार्थों वाले को सुख का आधार बनाकर रहना मनुष्य की बन्धन-दशा तथा अज्ञान की अब्रह्मचारिणी स्थिति है, इसमें मनुष्य का पतन ही सम्भव है।

कामुकता प्रायः अशुभ चिन्तन से, अश्लील दृश्यों के अवलोकन या बार-बार मनन करने से आती है। आचरण का बीज है विचार। विचारों को यदि सत्य की ओर या रचनात्मक प्रवृत्तियों में लगाये रहें और उन्हीं में सुख अनुभव करें तो ब्रह्मचर्य धारण की एक बहुत बड़ी कठिनाई हल हो जाती है। गाँधी जी कहा करते थे कि “आलसी मनुष्य कभी भी ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकता। वीर्य संग्रह करने वालों में एक अमोघ शक्ति पैदा होती है। उसका उपयोग अपने शरीर और मन को निरन्तर कार्यरत रखने में ही करना चाहिए। अतः प्रत्येक मनुष्य को कोई ऐसा कार्यक्षेत्र निर्धारित कर लेना चाहिए जिससे विषय-वासना की ओर भटकने के लिये मन को रञ्चमात्र भी समय न मिले।”



जिसका मन किसी वस्तु या व्यक्ति में आसक्त हो जाता है। उसके न रहने या न मिलने पर दुःख अनुभव करता है। उसका ही आश्रित, परावलम्बी बन जाता है तो यही स्थिति अब्रह्मचर्य का कारण बन जाती है। अतः अपने आत्मा के स्वरूप को सदैव ध्यान में रखकर आत्म-तृप्ति की अवस्था में जीवन क्रम चलाना चाहिए तभी ब्रह्मचर्य की नैष्ठिक स्थिति प्राप्त की जा सकती है।

स्त्री-पुरुष के शरीरों की भिन्नता और स्त्री-सौन्दर्य के प्रति आकर्षण से मनुष्य के विचारों में उत्तेजना आती है। प्रेरित और प्रभावित होकर अक्सर लोभ वासना के शिकार हो जाते हैं। पर यदि भली प्रकार चिन्तन करें तो यह मालुम पड़ता है कि शरीर की विविधता या आवरण में भी पौरुष या आत्मा ही विद्यमान है। अविनश्वर आत्मा के कल्याण के लिये शरीर के प्रति आकर्षण मानवोचित नहीं है। यह सोचना चाहिए कि इस शरीर में हाड़, मांस, मल-मूत्र आदि गन्दी वस्तुयें ही भरी पड़ी हैं। रुपहली चमक के पीछे अपनी आत्मा के कल्याण को विस्मृत नहीं किया जा सकता। दो क्षण के इन्द्रिय सुख के लिए जीवन के बहुल्य हित पर कुठाराघात नहीं किया जा सकता। वह करना चाहिए जिससे आत्म-ज्ञान बढ़े। मोह और काम के भाव 'आत्म-हित' को बेच डालना कभी विवेकपूर्ण नहीं कहा जा सकता।

विषय-सुखों में भटकने वाला मनुष्य का स्वेच्छाचारी और अहङ्कारी मन होता है। 'मनोनिग्रह की समस्या' ब्रह्मचर्य-पालन की प्रमुख समस्या है। इसके लिये ऊँचा आदर्श सामने रखना और उसके लिये संयमी जीवन का आचरण करना मनोनिग्रह का सर्वोत्तम उपाय है किन्तु यह उपाय उन्हें ही लाभ दे सकता है जो कुछ विचारशील हैं और जिन्होंने मनुष्य जीवन को नाशवान् समझकर तुच्छ स्वार्थों को ठुकरा देने का साहस पैदा किया है।

सामान्य व्यक्तियों के लिये मन को वशवर्ती बनाने के लिये आहार शुद्धि पर अधिक ध्यान देना चाहिए। मन वस्तुतः आहार की ही सूक्ष्मतम अवस्था का नाम है। अतः जैसा लोगों का आहार होता है वैसे ही उनका मन भी और



तदनुरूप उनके आचरण भी होते हैं। प्रत्येक मनुष्य को अपने आहार पर काबू रखना चाहिए। भोजन केवल शरीर रक्षा, प्रसाद और औषधि रूप में ही ग्रहण किया जाना चाहिए। अधिक कड़ुवे, तीखे, बासी-बुसे, मिर्च, मसालेदार, चटपटे भोजन की उपयोगिता स्वास्थ्य और आरोग्य की दृष्टि से भी नहीं है। आध्यात्मिक दृष्टि से तो ऐसे भोजन का कुछ महत्व ही नहीं है। मादक पदार्थ, खुले बाजारू खाद्य पदार्थों में केवल रोग के कीटारु ही नहीं फैल जाते वरन् उनमें आने वाले लोगों के दूषित संस्कार भी प्रवेश कर जाते हैं।

ब्रह्मचर्य मनुष्य जीवन के सभी लौकिक व पारमार्थिक सुखों का साधन है हमें अपने जीवन को ब्रह्मचर्यमय रखकर शक्तिमान्, क्रान्तिमान् मेधावान् तथा विचारवान् बनाने का सदैव प्रयत्न करते रहना चाहिए। जिसने इस मूल मन्त्र को समझ लिया उसके जीवन में सुखों की कोई कमी न होनी चाहिए।

ब्रह्मचर्य के विषय में भ्रान्तियाँ उसकी उपेक्षा

महापुरुषों और विद्वानों के उपर्युक्त उद्गारों को पढ़कर स्वभावतः यह भावना उत्पन्न हो जाती है कि जब ब्रह्मचर्य की महिमा इतनी बढ़ी चढ़ी है तो आज कल लोग उसके प्रति इतनी उपेक्षा की भावना क्यों रखते हैं? युवकों की बात छोड़ दीजिये, आजकल दस बारह साल के बालकों में दूषित भावनायें देखी जाती हैं। वे गन्दी अश्लील बातें सरे-आम करते हैं और उनमें से कितने ही परोक्ष में ऐसी हरकतें भी करते हैं। पर उनके माता पिता और समाज के अगुआ, कोई भी इस समस्या पर विचार नहीं करते और न उन बालकों को कुटेबों से बचाकर सच्चरित्रता की शिक्षा देना अपना कर्तव्य समझते हैं। अधिकांश माता-पिता तो अपने लड़के को निर्दोश और भोलाभाला समझकर इस बात की आशङ्का ही नहीं करते कि जल्दी या देर में वह इस तरह की बुरी आदतों का शिकार हो जायगा। इसीलिये उसे इस सम्बन्ध में कुछ बतलाना या दुश्चरित्रता की हानियों से सावधान करना अनावश्यक समझते हैं।

बहुत से अभिभावक ऐसा भी सोचते हैं कि बालकों से इस विषय



की चर्चा करना ठीक नहीं, क्योंकि ऐसा करने से वे समय से पूर्व ही इन बातों को जान जायेंगे और फिर कौतूहलवश लुक-छिपकर विपरीत आचरण करने लगेंगे। परिणाम यह होता है कि वे तो सकोच या असावधानी वश इस बात को टालते रहते हैं और बालक अपने किसी नीच प्रकृति के सङ्गी साथी या नौकर आदि से इस प्रकार की वीर्य-हानि करने वाली शिक्षा प्राप्त कर लेता है और शारीरिक पतन के मार्ग पर चलने लगता है। इसलिये आप इस भ्रम को सर्वथा त्याग दीजिये कि कोई अन्य व्यक्ति—शिक्षक, गुरु, उपदेशक आदि आपके बच्चे को इस विषय में उचित मार्गदर्शन करा देगा और वह हानिकारक दुष्कर्मों से बचा रहेगा।

प्राचीन काल में इसी दृष्टि से अधिकांश बालक कुछ समझदार होते ही मानसिक शिक्षण में कुशल गुरुओं के पास पढ़ने को भेज दिये जाते थे। वे उनको साधारण पढ़ने-लिखने की शिक्षा के साथ चरित्र सम्बन्धी शिक्षा भी देते थे और इस बात का ध्यान रखते थे कि लड़का वीर्य-रक्षा के नियमों का पालन करते हुए सदाचार के पथ पर चले। उसका शारीरिक और मानसिक विकास उचित रूप में हो सके और वह भावी जीवन में सुखी तथा सफल बन सके। यह प्रणाली जब तक उपर्युक्त रूपा में प्रचलित रही तब तक भारतीय घर-नारी ज्ञान, चरित्र, बुद्धि, पराक्रम, समृद्धि—सभी क्षेत्रों में अग्रगामी रहे। उपर्युक्त समय तक ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करने के प्रताप से उनके शरीर और मन में ऐसी सुदृढ़ता और शक्ति भर जाती थी कि वे अपने व्यक्तिगत सामाजिक, नागरिक कर्तव्यों का प्रशंसनीय रूप में पालन कर सकते थे और देश तथा राष्ट्र के सम्मान को ऊँचा रखने में सहायक होते थे।

वर्तमान दुर्गति के कारण

पर इस समय बालकों की शिक्षा दीक्षा के लिये जिन विदेशी ढङ्ग की शिक्षा-संस्थाओं का विकास हुआ है उनकी दशा बिल्कुल विपरीत है आरम्भ में चाहे इनसे कुछ उपकार भी हुआ हो और देश को ऊँचा उठाने वाले थोड़े बहुत व्यक्ति उनमें शिक्षा पाकर निकले हों पर इस समय तो उनकी दशा सब



तरह से शोचनीय ही दिखाई पड़ती है। यद्यपि उनकी संख्या बहुत बढ़ गई है और उनमें विद्यार्थियों की भीड़ भी बहुत अधिक रहने लगी है। पर उनकी उत्कृष्टता का दिन पर दिन ह्रास होता जाता है। अब ये स्कूल और कालेज, लड़कों के चरित्र, निर्माण के बजाय चरित्र-हीनता का आधार बनते जाते हैं। लड़कों की उदङ्गता, शिक्षकों के प्रति उनका असम्मानजनक व्यवहार, पढ़ाई की अपेक्षा फैशन तथा शौकों में उनकी प्रवृत्ति आदि दोष तो प्रत्यक्ष दिखाई पड़ ही रहे हैं वीर्य-रक्षा की भी उनमें बड़ी दुर्गति हो रही है। वहाँ का वायुमण्डल ऐसा दूषित हो गया कि जो सीधे और सुशील स्वभाव के बालक भी वहाँ जाते हैं वे अन्य लड़कों की संगति में पड़कर उनका उदाहरण देखकर थोड़े दिन में वैसे ही बन जाते हैं। जो थोड़े से बालक घरेलू परिस्थितियोंवश और स्वाभाविक रूप से सदाचारी रहना भी चाहते हैं उनको बड़ी आयु के दुष्ट लड़के बुरी तरह छेड़ते तथा तंग करते हैं जिससे वे पूरी तरह नहीं तो कुछ अंशों में चरित्र से गिर ही जाते हैं।

घरों की असन्तोषजनक व्यवस्था—

इन परिस्थितियों में बालकों को ब्रह्मचर्य की शिक्षा मिलने और किशोरावस्था में प्रयत्नपूर्वक वीर्य-रक्षा कर सकने की सम्भावना ही कहाँ रहती है? फिर हमारे घरों का वातावरण भी इसके प्रतिफल ही होता है। अधिकांश माँ-बाप और अन्य वयस्क लोग छोटे बच्चों को अनजान समझकर उनके सामने या समीप रहते भी दाम्पत्य-जीवन सम्बन्धी वार्तालाप या व्यवहार किया करते हैं। गरीब श्रेणी के लोगों के तो घर भी इतने छोटे रहते हैं कि उनमें बालकों के पृथक् रह सकने की गुंजायश ही नहीं रहती। और जीवन-यापन के सब काम करने पड़ते हैं। अतः बच्चों को काम बिकार की बातें देखने का मौका मिलता रहता है। इससे वे ४-५ वर्ष की छोटी आयु से ही स्त्री पुरुषों के गुप्त-अङ्गों के विषय में कुछ जान जाते हैं और चर्चा भी करने लगते हैं। देखने में तो यह आता है कि घर के बड़े लोग छोटे बच्चों के मुँह से अश्लील शब्दों को सुनकर हँसते रहते हैं और कितने ही तो उनकी छेड़-छाड़कर अपना मनोविनोद करते हैं। जब आगे चल

कर इसका परिणाम बुरा निकलता है और लड़का कुमार्गगामी बन जाता है, तब उनको गलती का अनुभव होता है ।

घरों का अन्य रहन-सहन, खान पान तथा व्यसनों का अभ्यास भी ऐसा होता है, जिसमें रहकर ब्रह्मचर्य की सम्भावना मिट जाती है । भारतीय मां-बापों में शायद ही एक-दो ऐसे होते हों, जो बालकों के विशेष खान-पान का ध्यान रखते हों । नहीं तो सर्वत्र जैसा मिर्चमसाले दार, उत्तेजक, गरिष्ठ, अप्राकृतिक भोजन स्वयं किया जाता है, वैसा ही बच्चों के लिये भी दे दिया जाता है । इतना ही क्यों घर के वातावरण से बहुत छोटी अवस्था में ही बालक बीड़ी, सिगरेट, भाँग, शराब आदि जैसे हानिकारक पदार्थ का व्यवहार भी सीख जाते हैं । जब घर के सब लोग इनको काम में लाते हों, तो बालकों पर नियन्त्रण रख सकना कठिन हो जाता है । आजकल ६-७ वर्ष के बालक भी बीड़ी पीते देख जाते हैं यह उनके घरों के दूषित वातावरण का ही परिणाम है । इतना ही क्यों जिन घरों में या जातियों में हुक्का, भङ्ग, मदिरा आदि का खुले तौर पर प्रचार है, वे स्वयं ही अपने बालकों को आरम्भिक अवस्था से थोड़ा-थोड़ा करके इनकी आदत डालते जाते हैं जिससे बड़े होने पर उनको पूरी तरह से ये व्यसन लग जाते हैं ।

ये सब उत्तेजक और नशे के पदार्थ ब्रह्मचर्य अथवा वीर्य रक्षा के विरोधी हैं । बड़ी आयु में भी इनके कारण काम-विकार पैदा होता है और वीर्य दूषित होता है । बालकपन में इनका प्रयोग करने से तो जड़ पर ही कुठाराघात होता है और ऐसे लड़के दस-पन्द्रह वर्ष की आयु में ही किसी न किसी तरह वीर्यपात करने लग जाते हैं । जिस तत्व को शरीर का राजा कहा जाता है और बल, ओज, तेज, साहस उत्साह आदि सब जिससे स्थिर रहते हैं उसको नष्ट करके ये भागामी जीवन में सुख शान्ति और सफलता किस प्रकार पा सकते हैं ? ऐसे लोग बड़े होकर निश्चय ही दुर्गचारी, दुर्गुणी, शठ, लम्पट बनकर अपना जीवन नष्ट करते हैं और जिस समाज में रहते हैं उसे भी तरह-तरह के कुमार्गों द्वारा नीचे गिराते हैं ।



ब्रह्मचर्य-रक्षा कैसे करें?—

इस प्रकार ब्रह्मचर्य की भावना के घटते जाने और वीर्य-नाश की प्रवृत्ति के जोर पकड़ते जाने के अनेक कारण हैं, पर सबसे बड़ा कारण समाज की परिस्थिति ही है। मनुष्य चाहे जैसा उच्छृङ्खल अथवा सदाचार रहित हो उसे समाज का ध्यान रखना ही पड़ता है। यदि समाज यौन-सदाचार को महत्त्व देने वाला हो और चरित्रहीनता को हेय दृष्टि से देखता हो तो बहुत कम व्यक्ति कुमार्ग पर जाने का साहस करेंगे। उस अवस्था में सदाचार-विमुख व्यक्ति सामाजिक अपमान और बहिष्कार से बचने के लिये राजी से नहीं तो लाचारी से ही अनैतिक कार्यों की ओर एकाएक अग्रसर न होंगे। यदि जनता का सदाचारी भाग प्रभावशील हो तो व्यभिचार के इच्छुक भी उस मार्ग पर चलने से रुक सकेंगे। यदि कोई विवेकहीन वंसा कर्म करेगा भी तो वह उसी प्रकार घृणित और नीच समझा जायगा जिस निगाह से हम वेश्या आदि को देखते हैं। इस तथ्य का विवेचन करते हुए एक विचारक ने लिखा है—

“यह बात समझने की जरूरत है कि समाज का गृहस्थ-जीवन जितना पवित्र होगा, उतनी ही समाज में ब्रह्मचारियों की संख्या अधिक मिल सकेगी। जिस देश में बहुसंख्यक लोगों का गृहस्थ-जीवन अपवित्र होगा वहाँ बहुत से शुद्ध ब्रह्मचारी कभी नहीं हो सकते।”

महात्मा गांधी ने चार पुत्र हो जाने के पश्चात् बड़ी आयु में ब्रह्मचर्य-व्रत ग्रहण किया था और उसे स्वानुभव तथा अभ्यास के बल से इतनी परिपूर्ण स्थिति तक पहुंचा दिया था कि उनका जीवन करोड़ों के लिये आदर्श बन गया। उन्होंने अपने ‘ब्रह्मचर्य के अनुभव’ विस्तारपूर्वक लिखे हैं और उन उपायों को भी बतलाया है जिनसे उनको इस कठिन कार्य में सफलता मिल सकी। नीचे उनके लेख का कुछ अंश दिया जाता है—

ब्रह्मचर्य और स्वादेन्द्रिय—

‘ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिये स्वादेन्द्रिय को वश में करना चाहिये। मैंने खुद अनुभव करके देखा है कि यदि स्वाद को जीत लें तो फिर ब्रह्मचर्य अत्यन्त सुगम हो जाता है। इस कारण मेरे भोजन-प्रयोग केवल अन्ना-



हार की दृष्टि से नहीं ब्रह्मचर्य की दृष्टि से होने लगे थे। मुझे अनुभव हुआ कि भोजन कम, सादा, बिना मिर्च-मसाले का करना चाहिये। ब्रह्मचारी का सर्वोत्तम भोजन तो पेड़ के पके फल हैं। फलाहार के दिनों में मेरे लिये ब्रह्मचर्य सहज था, पर जब मैं दूधाहार करने लगा तो वह कष्टसाध्य हो गया। पर दूध जैसा शरीर की रगों-नसों को मजबूत बनाने वाला और उतनी ही आसानी से हजम हो जाने वाला खाद्य दूसरा नहीं है। इसलिये मैं किसी से उसके त्याग के लिये नहीं कह सकता।”

ब्रह्मचर्य और उपवास—

“इन्द्रियाँ ऐसी बलवान हैं कि चारों ओर से, ऊपर-नीचे दशों दिशाओं से जब उन पर घेरा डाला जाता है, तभी कब्जे में रहती हैं। सभी लोग इस बात को जानते हैं कि आहार के बिना वे अपना काम नहीं कर सकती। इसलिये इन्द्रिय-दमन हेतु इच्छापूर्वक किये गये उपवासों से ब्रह्मचर्य पालन में बड़ी सहायता मिलती है कितने ही लोग उपवास करते हुए भी सफल नहीं होते। कारण यह होता है कि वे उपवास से ही सब काम पूरा हो जाने की सोच लेते हैं। वे बाहरी तौर पर उपवास करते हैं पर मन में छप्पन भोगों का ध्यान लगाते रहते हैं। उपवास से वास्तविक लाभ वहीं होता है जहां मन भी देह-दमन में साथ देता है।”

ब्रह्मचर्य और मनोविकार—

“ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले बहुतेरे इसलिये विफल होते हैं क्योंकि वे आहार-विहार तथा अवलोकन इत्यादि में ‘अब्रह्मचारी’ की तरह बर्ताव किया करते हैं। संयमी तथा स्वच्छन्द और भोगी तथा त्यागी जीवन में भेद आवश्यक होना चाहिये। साम्य तो सिर्फ ऊपर ही रहता है। भेद स्पष्ट रूप में दिखाई देना चाहिये। आँख से काम तो दोनों तरह के व्यक्ति लेते हैं, परन्तु ब्रह्मचारी देव-दर्शन करता है, भोगी नाटक-सिनेमा में लीन रहता है। कान का उपयोग दोनों करते हैं, परन्तु एक ईश्वर भजन सुनता है और दूसरा विलासमय गीतों के सुनने में आनन्द मानना है। भोजन दोनों करते हैं, परन्तु एक शरीररूपी तीर्थ-क्षेत्र की रक्षा मात्र के लिये पेट में अन्न डाल लेता है

और दूसरा स्वाद के लिये देह में अनेक चीजों को भरकर उसे दुर्गन्धित बनाता है ।”

“ब्रह्मचर्य पालन के लिये—मन, वचन, कर्म से समस्त इन्द्रियों के संयम के लिये पूर्वोक्त त्यागों की आवश्यकता है । जब तक अपने विचारों पर इतना कब्जा न हो जाय कि अपनी इच्छा के बिना एक भी विचार न आने पाये, तब तक पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन की आशा नहीं करनी चाहिये । जितने भी संसारी विचार हैं वे सब एक तरह के विकार हैं । उनको वश में करने का अर्थ है मन को वश में करना, और मन को वश में करना वायु को वश में करने से भी कठिन है । यद्यपि इसमें बड़ी कठिनाइयाँ हैं, पर यह न मान लेना चाहिए कि यह असाध्य है । ब्रह्मचर्य तो परम अर्थ के लिये परम-पुरुषार्थ की आवश्यकता हो तो इसमें कौन आश्चर्य है ।”

ईश्वर परायणता और आस्तिक भाव—

अन्त में सबसे बड़ा उपाय है ईश्वर-परायणता और ईश्वर की कृपा पर अटल विश्वास रखना । यदि हम मन से ईश्वर का चिन्तन करें, वाणी से उसकी चर्चा करें, शारीरिक कर्मों में भी यही ईश्वर-सेवा का भाव रखें तो ब्रह्मचर्य-पालन बहुत सरल हो जायगा । उस स्थिति में काम-विकार की बात सोचने और उसका चर्चा करने का अवसर नहीं मिलेगा । महात्मा गाँधी भी अन्त में इसी निष्कर्ष पर पहुँचे थे । उन्होंने लिखा है कि ‘जब मैं अफ्रीका से लौटकर पुनः भारत में आया तो मैंने देखा कि ब्रह्मचर्य केवल प्रयत्न साध्य नहीं है । जब तक मैं कहता था कि फलाहार से ब्रह्मचर्य का पूर्णतः पालन हो जायगा, तब तक वस्तुतः मैं एक प्रकार के विदेशी भाव में था । भारत आकर मुझे अनुभव हुआ कि सच्चे आत्मार्थी ब्रह्मचारी का अन्तिम साधन तो राम नाम और राम कृपा ही है ।

भोजन का शुद्ध और सात्विक होना—

शरीर के निर्माण और विकास का मुख्य आधार हमारा आहार होता है । शरीर ही नहीं मन पर भी इसका बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है । अशुद्ध अथवा अनीति द्वारा उपार्जित आहार को करता हुआ कोई मनुष्य सयमी रह



सके यह सम्भव नहीं। जो लोग मसालेदार, चटरटा अथवा गरिष्ठ भोजन करते हैं वे प्रायः कब्ज के शिकार हो जाते हैं। कब्ज हो जाने पर मल को बाहर निकालने में अधिक जोर लगाना पड़ता है। लगातार ऐसा करते रहने से इसका कुप्रभाव जननेन्द्रिय और वीर्यवाहिनी नसों पर भी पड़ता है और पेशाब के साथ वीर्य निकलना आरम्भ हो जाता है। इस प्रकार वीर्य नाश होना स्वास्थ्य के लिए असंदिग्ध रूप से हानिकारक होता है।

नशे से बचकर रहिये—सब प्रकार के नशे भी वीर्य-रक्षा के महान् शत्रु हैं। शराब, ताड़ी, अफीम, भाँग आदि प्रत्येक मादक-पदार्थ मनुष्य के मन को उत्तेजित करता है और उसे दुराचार की ओर प्रेरित करता है। सबसे खोट और सामान्य समझा जाने वाला 'धूम्रपान' ही वीर्य को ऐसा पतला और निर्बल कर देना है कि कुछ वर्ष तक उसका आदी होने के पश्चात् संयम और वीर्य-रक्षा का उद्देश्य असम्भव हो जाता है। तम्बाकू में एक प्रकार का घतक विष 'निकोटोन' पाया जाता है, जो यदि शुद्ध अवस्था में किसी नये व्यक्ति को दे दिया जाय तो वह उसी समय मर सकता है। यद्यपि धीरे-धीरे आदत डाल लेने से उसका कुप्रभाव शीघ्र नहीं जान पड़ता, पर वह स्वास्थ्य को निरन्तर हानि पहुँचाता रहता है और एक दिन वह मनुष्य को निर्बल और निस्तेज ही नहीं बना डालता, वरन् तरह-तरह के भयङ्कर रोग, जैसे कैंसर आदि उत्पन्न करके उसकी जीवन-लीला को समय से पूर्व ही समाप्त कर डालता है।

आलस्य, प्रमाद, शृङ्गारप्रियता, कृत्रिम जीवन, दुराचारी लोगों की सङ्गति और उनको कामुकता तथा वासनापूर्ण बातों में रस लेना, अनियमित दिनचर्या आदि अन्य अनेक बातें भी वीर्य-रक्षा की दृष्टि से आपत्तिजनक हैं। इनके कारण मनुष्य के मन को कुपथ में जाने का अवसर मिल जाता है और वह क्रमशः दूषित जीवन को अपना लेता है। यही कारण है कि प्राचीन धर्म-शास्त्रकारों ने ब्रह्मचर्य-आश्रम के लिए ऐसे कठिन नियम बनाये थे कि वे पत्त्रियों के संसर्ग से हो न बचें, वरन् किसी स्त्री के प्रति दूषित विचार भी मन में न लायें। इसमें सन्देह नहीं कि जो व्यक्ति स्वस्थ, सदाचारी, पवित्र और



मुखी जीवन ध्यतीत करके इस मानव-जन्म को सार्थक करना चाहता है, उसे अपना आचार-विचार ऐसा शुद्ध और सात्विक रखना चाहिये कि अनुचित रीति से वीर्य-नाश जैसा प्रसङ्ग उसके सम्मुख कभी उपस्थित ही न हो। ऐसा ही व्यक्ति अपना तथा अपने देश और समाज का उत्थान कर सकता है और किसी उच्च लक्ष्य को पूरा करके लोक और परलोक में सद्गति का अधिकारी बन सकता है।

इन्द्रिय-संयम की महिमा—

जो नव-युवक विदेशी काम-शास्त्र की पुस्तकें पढ़कर या अनुभवहीन लोगों की दलीलें सुनकर स्वयं भी ब्रह्मचर्य को निरर्थक कहने लगते हैं वे अपने चारों तरफ निगाह दौड़ाकर अपने साथियों की दशा देखें। उनमें से हजारों जवानी में ही शक्ति हीनता का अनुभव करके “ताकत की दवायें या टानिक” आदि ढूँढ़ने लगते हैं, हजारों प्रमेह के शिकार होकर पीले शरीर और निस्तेज चेहरे को लिये फिरते हैं और हजारों ऐसे भी हैं जो सुजाक और गर्मी जैसे रोगों के शिकार बनकर अपने जीवन को बर्बाद करलेते हैं। यह हो सकता है कि इङ्ग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी जैसे देशों के लोग ठण्डी आब-हवा के कारण तथा मांस-मदिरा आदि उत्तेजक आहार की अधिकता से अधिक सम्भोग के दुष्परिणामों को इतना शीघ्र अनुभव न करते हों, पर भारत जैसे गर्म आब-हवा वाले तथा शाकाहारी देश के निवासी यदि उनकी नकल करेंगे तो उन्हें अपनी गलती का प्रतिफल तुरन्त ही सहन करना होगा।

भारत के प्राचीन ममीषियों ने इस तथ्य को उसी समय भली प्रकार समझ लिया था और इसीलिये बालकों के लिये छोटी आयु से ही किसी सद्गुरु के मिनट रहकर युवावस्था तक ब्रह्मचर्य पालन का विधान बनाया था। उसी युग में वेदों ने स्पष्ट रूप से घोषित कर दिया था—

“ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युपाध्नत”

अर्थात्—“ब्रह्मचर्य के प्रताप से मनुष्य स्वास्थ्य और शक्ति ही प्राप्त नहीं करता वरन् वह मृत्यु को भी जीत सकता है।” इसका यह आशय नहीं कि वह कभी मरेगा ही नहीं। पर वह अकाल-मृत्यु को हटाकर दीर्घ जीवन

प्राप्त कर सकता है और शक्ति, साहस, वीरता का ऐसा उदाहरण उपस्थित कर सकता है जिसे देखकर संसार चकित रह जाये। हनुमान, लक्ष्मण, भीष्म, शङ्कराचार्य आदि महापुरुष इसके उदाहरण हो चुके हैं। हम भी यदि शास्त्रीय विधान के अनुसार आचरण रखते हुए सच्चे अर्थों में ब्रह्मचर्य का पालन करें तो वर्तमान की अपेक्षा बहुत अधिक महत्व के कार्यों का सम्पादन और संचालन करके दिखा सकते हैं।

वर्तमान समय में भी ब्रह्मचर्य की महत्ता के कुछ उदाहरण मिलते रहते हैं। इस युग के सर्वश्रेष्ठ मनुष्य माने जाने वाले और 'महामानव' की पटवी के सच्चे अधिकारी महात्मा गांधी ने सपत्नीक होते हुए भी ३७ वर्ष की आयु में पूर्ण ब्रह्मचर्य का व्रत ग्रहण कर लिया था और ४० वर्ष से अधिक समय तक उसका दृढ़तापूर्वक पालन किया। इस ब्रह्मचर्य से प्राप्त शक्ति का ही प्रताप था कि वे संसार में शक्तिशाली माने जाने वाले तथा सर्व साधन सम्पन्न अंग्रेजी साम्राज्य का आत्मबल से मुकाबला करके भारत को स्वतन्त्र करा सके। सन्त विनोबा का जीवन भी इस दृष्टि से आदर्श है। वे छोटी अवस्था से ही बाल ब्रह्मचारी रहे और सदा पूर्ण संयम का जीवन बिताकर अपनी शक्ति देश और जनता की सेवा में लगाते रहे हैं। इसी महाव्रत का प्रभाव है कि सत्तर वर्ष की आयु में, जबकि हमारे अधिकांश देशवासी या तो मर जाते हैं या निष्क्रिय होकर बैठ जाते हैं, उन्होंने हजारों मील की पैदल यात्रा की और 'भूदान' जैसे अद्वितीय आन्दोलन को सफल बनाकर दिखा दिया

इन्द्रियों का सदुपयोग करना सीखें

आत्म कल्याण के मार्ग में इन्द्रियों की प्रवृत्तता को प्रमुख शत्रु माना है। इन्द्रियों से प्राप्त होने वाले सुखों के प्रति राग और द्वेष मिलकर मनुष्य को दिग्भ्रान्त करते रहते हैं। यही कारण है कि बाह्य-जीवन की नश्वरता को स्वीकार करते हुए भी यह आत्मा के उद्धार की बात तक नहीं सोच पाता है। शास्त्रों में इस विषय में अधिक जोर दिया गया है कि मनुष्य को शरीर रहते हुये अपने स्वरूप का ज्ञान कर लेना चाहिये अन्यथा पुनः युग-युगान्तरो तक अनेकों घृणित योनियों में विचरण करना पड़ता है तब कहीं दुबारा मानव-

शरीर प्राप्त करने का संयोग मिलता है । इस दुर्लभ संयोग को यों ही बर्बाद कर देना बुद्धिमानी की बात नहीं है ।

अग्नि के तेजस्वी स्वरूप को देखने के लिए ऊपर की सारी राख हटनी पड़ती है अन्धकार फँल रहा हो तो किसी भी वस्तु का साफ-साफ स्वरूप नहीं दिखे पड़ता । उसी प्रकार अन्तःकरण के मल-विशेष बने रहें तो आत्म ज्ञान प्राप्त करना सम्भव न होगा । मानसिक चंचलता और आन्तरिक मर्लनता का उदय इन्द्रियों के असंयम से होता है । इसलिये गीताकार ने लिखा है—

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।

तयोर्न वशमामगच्छेत्तौ ह्यास्य परिपन्थिनौ ॥

अर्थात्—मनुष्य को चाहिये कि इन्द्रियों के अर्थ व उनमें सन्निहित जो राग और द्वेष हैं उन दोनों के वश में नहीं होवे, क्योंकि आत्म कल्याण के मार्ग में विघ्न करने वाले ये दोनों ही प्रबल शत्रु हैं ।

जिन इन्द्रियों को आत्म-विकास की रुकावट मानते हैं यथार्थ में हमारे आत्म-कल्याण का कारण भी वही हैं । शत्रु के रूप में तो वे अपने बहिर्मुखी स्वभाव के कारण परिलक्षित होती हैं । जब तक इनका उपयोग बाह्य-जीवन के सुखोपभोग में करते हैं तब तक यह शत्रु हैं किन्तु जैसे ही इन्हें आत्म ज्ञान व आत्म-विकास की ओर मोड़ देते हैं तो इनके सत्परिणाम भी दिखाई पड़ने लगते हैं । परेशानी तभी तक रहती है जब तक ये अपने अर्थों में पूर्ण स्वच्छन्द होती हैं । सदुपयोग करने लगे तो इन्हीं से महत्वपूर्ण आध्यात्मिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं । आवश्यकता सिर्फ इतनी है कि इनकी स्वतन्त्र विचरण की बहिर्मुखी प्रवृत्ति पर अंकुश बनाये रहें ।

किसी घोड़े को वे लगाम छोड़ दें तो वह अपने सवार को खड्डे में गिरा कर ही रहेगा । सवार की सुरक्षा सदैव इस बात पर निर्भर रहती है कि वह घोड़े के नियन्त्रण को ढीला न करे । इससे जिस दिशा में जितनी दूर जाना चाहेंगे वही घोड़ा सुरक्षा पूर्वक आपको पहुँचा देगा । जित्वा-इन्द्रिय को ही लीजिये । भाँति-भाँति के स्वाद युक्त व्यंजनों की उसे सदैव लालसा बनी रहती

है । चटोरपन की बहिर्मुखी प्रवृत्ति के कारण वह स्वास्थ्य को बर्बाद करती है । जिह्वा का उपयोग वस्तुतः इसलिए है कि उससे खाद्य या अखाद्य की पहिचान करते रहें । अधिक कड़ुवा खा लेने पर जीभ छटपटाने लगती है यह उसकी स्वाभाविक अभिव्यक्ति है कि यह अखाद्य है; उदरस्थ कर जाने का दुष्परिणाम तो बाद में मिलेगा । पाचन संस्थान की खराबी से होने वाले दुष्परिणामों से बचाने के लिए ही जीभ की तड़फड़ाहट ठीकी थी किन्तु इसका लाभ तभी है जब हम खाद्य और अखाद्य के भेद को स्वीकार करें, उस पर नियन्त्रण करें ।

आँखों का कार्य है सौन्दर्य-दर्शन । आत्मा के उद्गम परमात्मा के सौन्दर्य को अन्यतम कहा जाता है । उस आन्तरिक सौन्दर्य के साक्षात्कार की लालसा स्वाभाविक है । हर किसी को सुन्दर वस्तुयें देखने की इच्छा बनी रहती है । किन्तु अधिकांश होता यह है कि लोग बाह्यरूप रंग; चमक-दमक को ही सौन्दर्य मानते हैं । बात यहीं तक रहती तब भी गनीमत थी किन्तु स्वार्थपूर्ण और वासनात्मक दृष्टिकोण के द्वारा लोग आन्तरिक सौन्दर्य पर पर्दा डाल देते हैं । विराट् का सौन्दर्य इतना आल्हादमय है कि एक बार उसकी अनुभूति कर पायें तो आँखें सदैव उसे पाने के लिए ही तरसती रहेंगी । इसी दृष्टि से इनकी उपयोगिता भी है ।

इस संसार में जो कुछ भी हो रहा है वह सब विधिवत वैज्ञानिक तथ्य पर सन्निहित है इस विज्ञान को समझने के लिए इंद्रियों के विषय-विकारों से दूर रहना परमावश्यक है । इंद्रियों में आसक्त व्यक्ति कभी आध्यात्मिक विज्ञान की ओर उन्मुख नहीं हो सकता । उसकी सारी चेष्टायें इन्हीं कुत्सित, घृणित अदूरदर्शी, क्षणिक, सुखोपभोग के आस-पास ही चक्कर लगाया करती हैं । फलतः विराट् के साथ आत्मायता स्थापित करने की कभी भावना तक नहीं बन पाती । तुलसीदास जी ने मानस में लिखा है—

इन्द्रिय द्वार झरोखा नाना, तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना ।

आवत देखहि विषय बयारी, ते हठि देहि कपाट उघारी ।

जब सो प्रभञ्जन उर गृह जाई, तबहि दीप विज्ञान बुझाई ।

इन्द्रिय सुरन्ह न ज्ञान सोहाई, विषय भोग पर प्रीति सदाई ।

अर्थात्—अनियन्त्रित इन्द्रियाँ बलात विषयों की ओर खींच ले जाती है । ज्ञान-विज्ञान की बात यों ही रखी रह जाती है ।

विषयों में राग और द्वेषों में स्वच्छन्द विवरण करती हुई इन्द्रियों को विचार व विवेक द्वारा ही नियन्त्रण में रखा जा सकता है । भोग से कभी तृप्ति नहीं होती, इससे मनुष्य अपने जीवन-लक्ष्य से भटक कर दुःख, क्लेश तथा त्रास-दायक परिस्थितियों में जा फँसता है । इस विचार को गहराई तक अपने अन्तःकरण में प्रवेश कर लेने से और इस पर निरन्तर चिन्तन-मनन करते रहने से भोग के दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम दिखाई दे जाते हैं । धीरे-धीरे इनमें घृणा उत्पन्न होने लगती है ।

इतना होने से भी यह नहीं कहा जा सकता कि इन्द्रियाँ आपके वश में आ गईं । जब कभी अनुकूल परिस्थिति बन जाती है तो इनमें प्रबल उत्तेजना उठे बिना नहीं रह पाती । ऐसी अवस्था में सारी विचार-शक्ति लड़खड़ा जाती है और एक आवेश के साथ लोग बुरे कर्मों की ओर बलात खिंच जाते हैं । यह परिस्थिति विचारों की क्षीण शक्ति के कारण ही उपस्थित होती है, इस लिए अपने प्रत्येक विचार को एक सङ्कल्प का रूप दे देना चाहिये । बड़ी सूक्ष्मता और चतुराई से यह देखते रहना चाहिये कि इन्द्रियाँ कहीं अपनी इच्छा से तो हमें नहीं घसीट रही हैं । इन्द्रियों का स्वभाव जानकर उन्हें सही मार्ग पर ले जायें । इसका सबसे सरल उपाय यह है कि अपना अधिकांश समय परमात्मा के मनन चिन्तन में लगाये रखें । जितनी देर आपका मन आन्तरिक विचारों के क्षेत्र में डूबा रहेगा उतनी देर-इन्द्रिय-विषय भी बिल्कुल नहीं उठेंगे । यदि ऐसी स्थिति आती है तो उन्हें बहलाकर फिर से सङ्कितन में लगा देना चाहिये । इसके लिए मन का सङ्कल्पवान होना आवश्यक है इसी से इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखा जा सकता है ।

अपनी आन्तरिक निर्मलता बनाये रखने से इन्द्रियाँ अपने आप समित होने लगती हैं । इस व्यवस्था का आधार सदाचरण है । द्वेष, घृणा, ईर्ष्या, क्रोध आदि से ही अन्तःकरण मलिन व अपवित्र बनता है । अपनी भावनाओं

में प्रेम, स्नेह, आत्मीयता, सौजन्य और सहानुभूति के बाहुल्य से ही आंतरिक श्रेष्ठता स्थिर रहती है जब तक ऐसी स्थिति बनी रहती है तब तक दूषित विचार उत्पन्न नहीं होते और इन्द्रियाँ नियन्त्रित बनी रहती हैं।

इन्द्रियों को आत्मा का शत्रु नहीं सेवक मानना चाहिये। परमात्मा ने इन्हें इसलिए प्रदान किया है कि इनकी सहायता से सृष्टि-संचालन की आवश्यकता पूरी हो और सुख मिले। निःसन्देह इन्द्रियाँ बड़ी उपयोगी हैं। इनसे जीवात्मा का उत्कर्ष होता है और आनन्द की प्राप्ति होती है। ये आत्मा के हित व कल्याण में बाधक नहीं बरन् साधन स्वरूप हैं। इनका सदुपयोग किया जाय तो मनुष्य जीवन का मधुर रस चखता हुआ अपना जीवन लक्ष्य पूरा कर सकता है।

सच तो यह है किसी भी इन्द्रिय का उपयोग करना पाप नहीं है। ये अन्तःकरण को भिन्न क्षुधाओं पिपासाओं को तृप्त करने का उत्तम माध्यम हैं ज्ञानेन्द्रियों की क्षुधा उचित रीति से तृप्त नहीं की जाती तो आंतरिक क्षेत्र का सम्पूर्ण सन्तुलन ही बिगड़ जाता है। मानसिक गड़बड़ी पैदा होती है। बुरा तो इनका अनुचित उपयोग है। अस्वाभाविक इच्छा पूर्ति के लिये अनियन्त्रित भोग वासना के कारण आदमी पतित बनता है। अमर्यादित और स्वेच्छाचारी इन्द्रियाँ जीवन लक्ष्य से गिराती हैं इसलिये इन्द्रिय भोगों की सर्वत्र निन्दा की गई है। उचित रीति से भोगी गई इन्द्रियाँ दुःख का कारण नहीं होतीं। स्वाभाविक रीति से इन्द्रियों का सदुपयोग बुरा नहीं होता। हमारे शत्रु के रूप में तो अनियन्त्रित भोग-वासना होती है। इससे ही बचने का सदैव प्रयत्न करते रहना चाहिये।

4/3



युग निर्माण प्रेस, गायत्री तपोभूमि मथुरा।

नैतिक एवं सांस्कृतिक पुनरुत्थान के लिए 'युग निर्माण योजना' नामक आन्दोलन विगत १२ वर्षों से सक्रियता पूर्वक चल रहा है । देश विदेश में लाखों सदस्य तथा हजारों शाखाओं द्वारा सुसंगठित तथा सुव्यवस्थित रूप से प्रचारात्मक तथा रचनात्मक कार्यों द्वारा लक्ष्य की ओर सतत प्रगति की जा रही है ।

आन्दोलन की विचारधारा के प्रसार के लिए मथुरा से ७ पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं । अखण्ड ज्योति मासिक, युग निर्माण योजना मासिक, एवं युग निर्माण योजना पाक्षिक पत्रिकाएँ हिन्दी में तथा गुजराती, मराठी, अंग्रेजी तथा उड़िया पत्रिकाएँ नियमित रूप से प्रकाशित हो रही हैं ।

विचार क्रान्ति एवं भावनात्मक नव निर्माण के कार्यक्रमों पर प्रकाश डालने के लिये मूल्य ५० पैसे से २.५० मूल्य तक की लगभग ४०० विभिन्न पुस्तकें प्रकाशित की गयी हैं । लोक सेवियों—प्रचारकों के लिए विभिन्न स्तर के प्रशिक्षण की व्यवस्था भी केन्द्र में है ।

प्रकाशक—“युग निर्माण योजना” मथुरा ।

मूल्य ५० पैसे

: युगऋषि पं. श्रीराम शर्मा आचार्य- संक्षिप्त परिचय :



ज्यादा जानकारी यहाँ से प्राप्त करें :
<http://hindi.awgp.org/about-us>

- **विचारक्रान्ति अभियान के प्रणेता** : विचारों को परिसूत और ऊँचा उठाने में समर्थ 3000 से भी अधिक पुस्तकों के लेखन के माध्यम से विश्वव्यापी विचार क्रान्ति अभियान की शुरुआत की ।
- **वेद, पुराण, उपनिषद के प्रसिद्ध भाष्यकार** : जिन्होंने चारों वेद, 108 उपनिषद, षड् दर्शन, 20 स्मृतियाँ एवं 18 पुराणों का युगानुकूल भाष्य किया, साथ ही 19 वीं प्रज्ञा पुराण की रचना भी की ।
- **3000 से अधिक पुस्तकों के लेखक** : मनुष्य को देवता समान, घर-परिवार को स्वर्ग, समाज को सभ्य और समग्र विश्वराष्ट्र को श्रेष्ठ बनाने में समर्थ हजारों पुस्तकें लिखकर समयानुकूल समर्थ मार्गदर्शन प्रदान किया ।
- **युग-निर्माण योजना के सूत्रधार** : जिन्होंने शतसूत्री युग निर्माण योजना बनाकर नये युग की आधार शिला रखी ।
- **वैज्ञानिक-अध्यात्मवाद के प्रणेता** : जिन्होंने धर्म और विज्ञान के समन्वय की प्रथम प्रयोगशाला 'ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान' स्थापित कर सिद्ध किया कि "धर्म और विज्ञान विरोधी नहीं, पुरक है" ।
- **'२१ वीं सदी : उज्ज्वल भविष्य' के उद्घोषक** : जिन्होंने '२१ वीं सदी : उज्ज्वल भविष्य' का नारा दिया तथा युग विभीषिकाओं से भयग्रस्त मनुष्यता को नये युग के आगमन का संदेश दिया ।
- **स्वतंत्रता संग्राम के कर्मठ सेनानी** : जिन्होंने महात्मा गाँधी, मदन मोहन मालवीय, गुरुवर रविन्द्रनाथ टैगोर के साथ राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए संघर्ष किया एवं स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी 'श्रीराम मत्त' के रूप में प्रख्यात हुए ।
- **गायत्री के सिद्ध साधक** : जिन्होंने गायत्री और यज्ञ को रुढ़ियों और पाखण्ड से मुक्त कर जन-जन की उपासना का आधार तथा सद्बुद्धि एवं सतकर्म जागरण का माध्यम बनाया ।
- **तपस्वी** : जिन्होंने गायत्री की कठोरतम साधना कर २४-२४ लाख के २४ महापुरश्चरण २४ वर्षों में सम्पन्न किया । प्रकृति प्रकोप को शांत कर अनिष्टों को दाला, सृजन सम्भावनाओं को साकार किया ।
- **अखिल विश्व गायत्री परिवार के जनक** : जिन्होंने अपने जीवनकाल में ही अपने साथ करोड़ों लोगों को आत्मियता के सूत्र में बाँधकर विश्व व्यापी 'युग निर्माण परिवार' - 'गायत्री परिवार' का गठन किया ।
- **समाज सुधारक** : जिन्होंने नारी जागरण, व्यसन मुक्ति, आदर्श विवाह, जाति-पाँति प्रथा तथा परंपरागत रुढ़ियों की समाप्ति हेतु अद्भूत प्रयास किए एवं एक आदर्श स्वरूप समाज में प्रस्तुत किया ।
- **ऋषि परम्परा के उद्धारक** : जिन्होंने इस युग में महान ऋषियों की महान परंपराओं की पुनर्स्थापना की । लुप्तप्राय संस्कार परंपरा को पुनर्जीवित कर जन-जन को अवगत कराया ।
- **अवतारी चेतना** : जिन्होंने 'धरती पर स्वर्ग के अवतरण और मनुष्य में देवत्व के जागरण' की अवतारी घोषणा को अपना जीवन लक्ष्य बनाया और चेतना का ऐसा प्रवाह चलाया कि करोड़ों व्यक्ति उस ओर चल पड़े ।

गायत्री परिवार जीवन जीने कि कला के, संस्कृति के आदर्श सिद्धांतों के आधार पर परिवार, समाज, राष्ट्र युग निर्माण करने वाले व्यक्तियों का संघ है। **वसुधैवकुटुम्बकम्** की मान्यता के आदर्श का अनुकरण करते हुये हमारी प्राचीन ऋषि परम्परा का विस्तार करने वाला समूह है गायत्री परिवार। एक संत, सुधारक, लेखक, दार्शनिक, आध्यात्मिक मार्गदर्शक और दूरदर्शी युगऋषि पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी द्वारा स्थापित यह मिशन युग के परिवर्तन के लिए एक जन आंदोलन के रूप में उभरा है।

Free Download Complete Work Of Yugal Kishore P. Shriram Sharma Acharya, Founder of All World Gayatri Pariwar Books, Magazines, Articles, Stories, Poems, Great Personalities and many more at

www.vicharkrantibooks.org | www.awgp.org